P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 Vol-I* Issue- VII* October - 2016
E: ISSN NO.: 2455-0817 **Remarking An Analisation**

# श्रमण संस्कृति –मुख्य विशेषताएं, प्राचीनता एवं भारतीय संस्कृति के क्षेत्र में योगदान

**सुरेन्द्र पाल सिंह**
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
बैसवारा पी0जी0 कालेज,
लालगंज, रायबरेली

**सारांश**

संस्कृति का अर्थ संस्कार सम्पन्न जीवन है। वह जीवन जीने की कला है, पद्धति है। संस्कृति एक ऐसा विराट तत्व है जिसमें सभी कुछ समाविष्ट हो जाता है। मानव जीवन के ज्ञान, भाव और कार्य यह तीन पक्ष है। जिसे दूसरे शब्दों में बुद्धि, हृदय और व्यवहार कहा जा सकता है। इन तीनों तथ्यों का जब समन्वय होता है तब संस्कृति का जन्म होता है। संस्कृति मानव जीवन का सौन्दर्य है, सौरभ है, संस्कृति जीवन का मिठास है, गरिमा है। जितनी संस्कृति अपनायी जायेगी उतना ही जीवन महान बनेगा। जिस समाज और राष्ट्र की संस्कृति प्राणवन्त है उसका कभी विनाश नहीं हो सकता। वह सदैव ध्रुवतारे की तरह चमकता रहेगा।

श्रमण संस्कृति ने भारत की सांस्कृति एकता को बनाये रखने में महत्वपूर्ण प्रयास किया। विश्व को सत्य, अहिंगसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह के महाव्रतों की शिक्षा दी और विश्व शांति की सहायता में अनुपम योग दिया। इसी कारण विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में श्रमण संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है।

**मुख्य शब्द :** श्रमण संस्कृति,भारतीय संस्कृति,संस्कार,पथ–प्रदर्शिका,वैदिक संस्कृति

**प्रस्तावना**

श्रमण संस्कृति के विषय में कुछ लिखने से पूर्व यह जानना आवश्यक हो जाता है कि संस्कृति किसे कहते हैं। किसी समाज की रचना उसके आन्तरिक आचार संगठन पर निर्भर करती है। संस्कृति को उस समाज की आचार संहिता कह सकते हैं, क्योंकि संस्कृति के बिना समाज रचना की कल्पना नहीं की जा सकती। संस्कृति समाज की पथ–प्रदर्शिका होती है। संस्कृति समाज तथा व्यक्ति को समुन्नत बनाती है और उसको दोषमुक्त करती है। प्राकृतिक विधान के अनुरूप संस्कार की हुई पद्धति ही संस्कृति है। किसी भी देश की संस्कृति उस देश के धर्म, दर्शन, विचार, संगीत कला आदि पर आधारित होती है। इन्हीं विविध रूपों द्वारा संस्कृति अपने को अभिव्यक्त करने में समर्थ होती है। भारत की प्राचीन संस्कृति इस देश के निवासियों की कृति में निहित है। भारतीय मनीविषयों की अविरल साधना का प्रतिफल ही भारतीय संस्कृति है। दर्शन, काव्य, कला, भाषा, शिक्षा और शिल्प आदि संस्कृति के अंग है।

संस्कृति का अर्थ संस्कार सम्पन्न जीवन है। वह जीवन जीने की कला है, पद्धति है। वह आकाश में नहीं, धरती पर रहती है, वह कल्पना में नहीं जीवन का ठोस सत्य है। बुद्धि का कुतुहल नहीं किंतु एक आदर्श है। संस्कृति एक ऐसा विराट् तत्व है, जिसमें सभी कुछ समाविष्ट हो जाता है। मानव जीवन के ज्ञान, भाव और कार्य यह तीन पक्ष है जिसे दूसरे शब्दो में बुद्धि, हृदय और व्यवहार कहा जा सकता है इन तीनों तथ्यों का जब पूर्ण समन्वय होता है तब संस्कृति का जन्म होता है। संस्कृति मानव–जीवन का सौन्दर्य है, सौरभ है, संस्कृति जीवन का मिठास है, गरिमा है। जितनी संस्कृति अपनाई जायेगी उतना ही जीवन महान् बनेगा। जिस समाज और राष्ट्र की संस्कृति प्राणवन्त है, उसका कभी विनाश नहीं हो सकता। वह ध्रुवतारे की तरह सदैव चमकता रहेगा।

**श्रमण संस्कृति**

भारत वर्ष में दो संस्कृतियों की प्रधानता रही है। जिनके संयुक्त रूप को भारतीय संस्कृति कह सकते हैं। इन संस्कृतियों के नाम है –

1. श्रमण संस्कृति तथा
2. वैदिक संस्कृति।

वैदिक संस्कृति और श्रमण संस्कृति समानान्तर रूप से प्रवाहित होती रही है और इनको एक दूसरे की पूरक कहा जा सकता है। श्रमण संस्कृति के तपस्वियों को श्रमण मुनि तथा वैदिक संस्कृति के तपस्वियों को सन्यासी, ऋषि आदि नामों से सम्बोधित किया जाता रहा है।

**श्रमण शब्द का अर्थ**

श्रमण शब्द का प्रयोग जैन मुनियों एवं बौद्ध भिक्षुओं दोनो के लिए ही किया जाता रहा है। जो श्रम करता है, कष्ट सहता है अर्थात् तप करता है वह तपस्वी श्रमण है।[1] जिसके मन में समता की सुरसरिता प्रवाहित होती है, अपितु अपनी मन स्थिति को सम रखता है वह श्रमण कहलाता है।[2] श्रमण वह है जो पुरस्कार के पुष्पों को पाकर प्रसन्न नहीं होता है अपमान के हलाहल को देखकर खिन्न नहीं होता, अपितु सदैव मान और अपमान में सम रहता है।[3] उत्तराध्ययन में कहा है ''सिर मुंडा लेने से कोई श्रमण नहीं होता किन्तु समता का आचरण करने से ही श्रमण है।[4]

इस प्रकार जैन संस्कृति की साधना समता की साधना है। समता समभाव, समदृष्टि एवं साम्य भाव ये सभी जैन संस्कृति के मूल तत्व है। निघण्टु में श्रमण का अर्थ नग्न दिगम्बर ही किया गया है। यथा––

''श्रमणा दिगम्वराः श्रमणा वातरशना (वसना)''
–भूषण टीकायाम इति निघण्टु।

इन श्रमणों का इस देश में रहने का कारण यही था कि दिगम्बर वेश भारतीय संस्कृति में सर्वश्रेष्ठ एवं परम वन्दनीय अवस्था मानी गई है। आचार्य सोमदेव सूरि लिखते है कि ''लोक में नग्नत्व सहज है, स्वाभाविक है। वस्त्रों से शरीर का अच्छादन विकार है।[5]

वैराग्यशतक में भी इस प्रकार की प्रार्थना की गई है कि ''हे शम्भो ! वह समय कब आयेगा जब मैं एकाकी, इच्छा रहित, शान्त, करपात्रधारी, दिगम्बर, होकर कर्मनिर्मूलन (निर्जरा) करने में समर्थ होऊगा।[6] तैत्तिरीय आरण्यक में भगवान ऋशभदेव के शिष्यों को वातरशन ऋषि और ऊर्ध्वमंथी कहा गया है।[7] श्रीमद्भागवत पुराण में लिखा है, 'स्वयं भगवान विष्णु महाराज नामि का प्रिय करने के लिए उनके रनिवास में महाराज मरूदेवी के गर्भ में आए। उन्होने वातरशना श्रमण ऋषियों के धर्म को प्रकट करने की इच्छा से यह अवतार ग्रहण किया।[8]

इस प्रकार श्रमण संस्कृति के प्रणेता प्राकृतिक (नग्न) वेष में विचरण करते थे और हर प्रकार के व्यसन से मुक्त थे। उनको किसी भी पदार्थ की इच्छा नहीं थी तथा वे समत्व भाव को प्राप्त कर चुके थे। इन्हीं उच्च आदर्शो एवं उज्जवल चरित्र के कारण जन साधारण तथा राजा महाराजाओं में वे पूजनीय समझे जाते थे। राजा जनक उन्हें बड़े सम्मान के साथ आहार कराते थे।[9] आत्म विद्या विशारद भी यही श्रमण थे।[10]

**श्रमण संस्कृति एवं वैदिक संस्कृति**

श्रमण संस्कृति का वैदिक संस्कृति पर बहुत प्रभाव पड़ा। डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है। 'श्रमण परम्परा के कारण ब्राह्मण धर्म में वानप्रस्थ और सन्यास को प्रश्रय मिला।[11] श्रमण मुनि तथा वैदिक संस्कृति के प्रतीक ऋषि शब्द की विशेषता तथा दोनो संस्कृतियों के मध्य अन्तर का उल्लेख करते हुए डा0 गुलाबराय ने लिखा है कि ''इस प्रकार मुनि शब्द के साथ ज्ञान, तप और वैराग्य जैसी घटनाओं का गहरा सम्बन्ध है।'' मुनि शब्द का प्रयोग वैदिक संहिताओं में बहुत ही कम हुआ है। श्रमण संस्कृति में ही यह शब्द अधिकांशतः प्रयुक्त हुआ है। पुराणों में जो वैदिकता की धाराओं का समन्वय प्रस्तुत करते हैं, ऋषि और मुनि शब्द का प्रयोग बहुत कुछ मिले–जुले अर्थ में होने लगा था। दोनो संस्कृतियों में ऐतिहासिक विकासक्रम की दृष्टि से भिन्नता है। ऋषि या वैदिक संस्कृति की दृष्टि से भिन्नता है। ऋषि या वैदिक संस्कृति में कर्मकाण्ड की प्रधानता और असहिष्णुता की प्रवृत्ति बढ़ी, तो श्रमण संस्कृति अथवा मुनि संस्कृति में अहिंसा बढ़ी, निरामिषता तथा विचार सहिष्णुता की प्रवृत्ति दिखलाई दी।[12]

इस प्रकार श्रमण संस्कृति में सहिष्णुता, अहिंसा, निरामिषता की प्रमुखता थी, जबकि वैदिक संस्कृति में असहिष्णुता, कर्मकाण्ड की प्रधानता तथा वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' थी। अतः दोनों संस्कृतियों में पर्याप्त अंतर दृष्टिगोचर होता है। डा0 गुलाबराय ने श्रमण एवं वैदिक संस्कृकितयों के आदान प्रदान का वर्णन करते हुए इस प्रकार लिखा है, '' वैदिक और श्रमण संस्कृति में सामंजस्य की भावना के आधार पर आदान–प्रदान हुआ और इन्होने भारतवर्ष की वैदिक एकता बनाये रखने का महत्वपूर्ण कार्य किया। व्रात्यों और श्रमण ज्ञानियों की परम्परा का प्रतिनिधित्व भी जैन में किया।[13]

श्रमण संस्कृति तथा वैदिक संस्कृति दोनो ने भारतीय संस्कृति के क्षेत्र में अपना अपना योगदान दिया और उसका सम्पन्न बनाया। इनमें भी श्रमण संस्कृति ने भारतीय संस्कृति को अमरत्व प्रदान किया। इसमें सहिष्णुता, अहिंसा, त्याग, उदारता, सत्य अपरिग्रह, विश्वबन्धुत्व एवं सम्यक् दृष्टि, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र आदि अमूल्य रत्नों से विभूषित किया। इस विषय में श्री वाचस्पति गैरोला का कथन बहुत ही उपयुक्त है– ''भारतीय विचारधारा हमें आदिकाल से ही दो रूपों में विभक्त हुई मिलती है।'' पहली विचारधारा परम्परा मूलक ब्राह्मणवादी रही है, जिसका विकास वैदिक साहित्य के वृहत् रूप में प्रकट हुआ। दूसरी विचारधारा पुरूषार्थ मूलक, प्रगतिशील, श्रामण्य या श्रमण प्रधान रही है, जिसमें आचरण को प्रमुखता दी गई। ये दोनो विचारधाराएं एक दूसरे की प्रपूरक भी रहीं और विरोधी भी। इस राष्ट्र की बौद्धिक एकता को बनाए रखने में इन दोनो का समान एवं महत्वपूर्ण स्थान है। पहली ब्रह्मवादी विचारधारा का जन्म पंजाब तथा पिश्चिमी उत्तर प्रदेश में हुआ और दूसरी श्रमण प्रधान विचारधारा का उद्भव असम, बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के व्यापक अञ्चल में हुआ। श्रमण प्रधान विचारधारा के जनक थे जैन।[14]

**श्रमण संस्कृति की विशेषतायें**

श्रमण संस्कृति विश्व की संस्कृतियों में अपना अपूर्व, प्राचीन और महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इस संस्कृति में अपनी निज की अनेक विशेषतायें हैं, जिनके

कारण इसने विश्व के सामने महान् आदर्श प्रस्तुत किया है। इस संस्कृति की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं।

**श्रम और तप**

श्रम और तप श्रमण संस्कृति की प्रमुख विशेषतायें हैं। जो श्रम करता है, संयमित जीवन बिताता है वह श्रमण है। श्रमण मुनियों का जीवन आदर्श एवं त्यागपूर्ण होता है। उनका प्रत्येक क्षण तपश्चर्या–आत्म साधना में व्यतीत होता है। दिगम्बर मुनि (श्रमण) चर्या सुगम नहीं यह महाव्रती का जीवन है। अहिंसा, सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह उनके महाव्रत हैं।

**चरित्र की महत्ता**

श्रमण संस्कृति में चारित्र निर्माण पर पूर्ण बल दिया गया है। चारित्र आत्म विकास का स्रोत हैं चारित्र के स्वरूप का अवलोकन करने और उसके सौरभ का पान करने के लिए चक्रवर्ती सम्राट् और स्वर्ग के देव–इन्द्र भी तरसते हैं। एक मात्र मनुष्य जन्म ही ऐसा श्रेष्ठ है, जिसमें चारित्र को धारण कर रत्नत्रय के आधार पर मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। संसार की समस्त परम्परायें रहें या जायें, कुछ बनता बिगड़ता नहीं, परन्तु यदि चारित्र रत्न चला गया तो आत्म विकास चला गया। ऐसा समझाना चाहिए चरित्र ही धर्म है, कहा भी गया है कि चरित्र के समान अन्य कोई परम तप नहीं है। यह चरित्र दो प्रकार का है

1. सकल चारित्र (श्रम सम्बन्धी चारित्र)
2. विकल चारित्र (ग्रहस्थ सम्बन्धी चारित्र)

**विषय परांङ्मुखता**

भोग भूमि काल में जब मनुष्य संस्कृति विहीन अवस्था में था तब वह विषयों की ओर दौड़ने में सुख मानता था। उसे आत्म–परमात्म का बोध न था। कर्म भूमि के आदि में तीर्थकर ऋषभदेव ने श्रम संस्कृति की आधार भूत असि–मसि–कृषि–वाणिज्य विद्या और शिल्प का उपदेश देकर मानव को 'जल में भिन्न कमलवत रहने' की शिक्षा दी और मोक्ष का द्वार खोला। उन्होने बतलाया कि हे प्राणी तू संसार में जब तक रहे, आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए भी आवश्यकता पूर्ति के साधनों से ममत्व मत कर, उन साधनों का अधिक संचय मत कर। तू विषय वासनाओं को नश्वर समझ। इसी मान्यता का प्रभाव संतोष और सुख की झलक के रूप में मिल रहा है।

**जीओ और जीने दो**

इस सिद्धान्त का स्रोत श्रमण संस्कृति अथवा जैन परम्परा ही है। इस आत्म–संतोष के साथ पराये अधिकारों का परहित संरक्षण भी है। यदि मनुष्य चाहता है कि उसे कोई कष्ट न दे, उसके अधिकारों से वंचित न करे तो उसका मुख्य कर्तव्य है कि वह स्वयं जीये और दूसरों को भी जीने दे। इस भावना से चोरी जैसे पर दुखदायी और आत्म–पतन जैसे निन्द्य कर्म का त्याग भी होता है। परिग्रह के परिमाण और त्याग की भावना में उक्त सिद्धान्त अमोध अस्त्र है।

**सुख का मूल मन्त्र आत्मोपलब्धि**

सांसारिक नश्वर विषय वासनाओं से विरक्त हो अविनाशी परमपद मोक्ष प्राप्त करना जैन संस्कृति के श्रमणों का मूल उद्देश्य रहा है इसी का प्रतिफल है कि श्रमणों ने तार का भी परित्याग कर दिया है। जैन श्रावक (ग्रहस्थ) के आचार में इस आत्मोलब्धि द्वार की झलक उसके अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षा व्रतों में मिलती है। आत्मोपलब्धि श्रमण परम्परा में अनवरत रूप से पाई जाती है।

**दिगम्बरत्व**

पदार्थो के शुद्ध स्वरूप की दृष्टि से संसार का प्रत्येक पदार्थ दिगम्बर रूप है। जब तक इस रूप की प्राप्ति नहीं होती पदार्थ के स्वरूप का दर्शन नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ जब तक अग्नि राख से ढ़की रहती है, उसका तेज अप्रकट ही रहता है। वस्त्र आदि व्याधि हैं, यहां तक कि यह शरीर जो अपने साथ दृष्टिगोचर हो रहा है आत्मा का आवरण है। जब तक ऐसे सांसारिक पदार्थो से मोह नहीं छोड़ा जायेगा, इनका परित्याग नहीं किया जायेगा तब तक आत्मोपलब्धि नहीं हो सकेगी।

**सुख–दुख में समता भाव**

मनुष्य का मन है। जब तक मन की क्रिया होती है उसमें अच्छे बुरे सभी प्रकार के विकल्प उठते रहते हैं। इन्ही विकल्पों का नाम सुख–दुख है। ज्ञानी पुरूष इनमें राग–द्वेष नहीं करते। उनकी भावनाओं में सुख में मग्न न फूलें दुख में कभी न घबराये की ध्वनि ही गूंजती है। जैसे दिन के पश्चात रात्रि और रात्रि के पश्चात दिन होता है वैसे ही सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख का उदय होता है। ये वस्तु के अपने रूप नहीं, मानव की कल्पनाओं के रूप हैं और क्षणिक हैं। अतः श्रमण संस्कृति में क्षणिकत्व जैसे इन नश्वर विकल्पों पर हर्ष विषाद के लिए कोई स्थान नहीं है। जैन श्रमण मुनि और श्रावक दोनो ही सुख–दुख में समत्व भाव रखने के आदि बने। इसलिये पदार्थो के सत्य स्वरूप और अनित्य आवरण आदि भावनाओं का विषद और निर्दोष विवेचन श्रमण संस्कृति में किया गया है।

**नारी की प्रतिष्ठा**

नर और नारी ये दोनो रूप प्राकृतिक और अनादि नियम हैं। दोनो का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। अतः श्रमण संस्कृति में नारी की पूर्ण प्रतिष्ठा रही है। युग के अनादि तीर्थकर ऋषभदेव की दो पुत्रियों ब्राह्मी और सुन्दरी तथा कालान्तर में समय समय पर होने वाली अनेकों नारियों ने सामाजिक और धार्मिक दोनों ही क्षेत्रों में आदर्श उपस्थित कर यश अर्जन किया है। वे योग्य से योग्य माता, आदर्श नारी और सौभ्यता कीं मूर्ति श्रमणी–साध्वी तक हुई है। अतीत से वर्तमान तक की धारा में होने वाली आदर्श नारियों में धर्मपरायण, पति परायण, आत्म परायण सभी वर्ग की नारियाँ सम्मिलित है।

माता मरूदेवी, महारानी त्रिशला, रानी चेलना, महारानी सीता, द्रोपदी, चन्दनबाला, मैना सुन्दरी आदि सहस्रों सती नारियां ऐसी हुई हैं, जिन्हें पूर्ण सम्मान मिला और जिनकी यशोगाथा आज भी आदर्श रूप है।

संक्षेप में यही श्रमण संस्कृति की प्रमुख विशेषतायें हैं। अपनी उपर्युक्त विशेषताओं के कारण ही श्रमण संस्कृति का यशोगान विश्व में होता रहा है। भारतीय श्रमण संस्कृति के उदात्त तत्वों के प्रति आस्था ही वर्तमान विश्व को संकट से परित्राण दिला सकती है।

मानव जगत में मात्स्य न्याय की प्रवृत्ति का निवारण इसी से हो सकता है। यह देन उन विश्ववन्द्य वीतराग तीर्थकरों की है, जिन्होने मनुष्य मात्र के कल्याण का मार्ग दर्शन किया। जो क्षेत्रीय; प्रान्तीय एवं राष्ट्रीय रागों से ऊपर उठकर मनुष्य मात्र के कल्याण का चिंतन करते थे। जिनकी चरण–छाया में बैठने वाले आचार्यो ने 'क्षेमं सर्व प्रजानाम्' लिखा, न कि किसी एक जाति विशेष को लक्ष्य करके हितोपदेश दिया।

**श्रमण संस्कृति की प्राचीनता**

श्रमण संस्कृति विश्व की सबसे प्राचीन संस्कृति है। यह संस्कृति सिन्धु, मिस्र, यूनान, बेबीलोने तथा रोम की संस्कृतियों से कहीं अधिक पुरातन हैं भागवत का आद्यमनु स्वायम्भुव के प्रपौत्र नाभि के पुत्र ऋषभदेव को दिगम्बर श्रमण और ऊर्ध्वगामी मुनियों के धर्म का आदि प्रतिष्ठाता माना है। उन्होने ही श्रमण धर्म को जन्म दिया था। उनके सौ पुत्रों में से 9 पुत्र श्रमण बने।[15] ऋषभदेव के सौ पुत्रों में से 9 पुत्र बड़े भाग्यशाली थे। आत्मज्ञान में निपुण थे और परमार्थ के अभिलाषी थे। वे श्रमण दिगम्बर मुनि बन गये। वे अनशन आदिक तप करते थे। जो स्वयं तपश्चरण करते हैं वे श्रमण हैं।

ऋषभदेव के उपरान्त अनेक दिगम्बर जैन मुनियों ने इस श्रमण संस्कृति की धारा को प्रवाहित किया। सभी तीर्थकर श्रमण थे और उन्होंने श्रमण धर्म का उपदेश दिया तथा इस संस्कृति में महान् योगदान दिया। ऋषभदेव से लेकर महाश्रमण वर्द्धमान महावीर तीर्थकर तक श्रमण संस्कृति की धारा निरन्तर प्रवाहित होती रही। श्रमण धर्म ही आगे चलकर जैन धर्म के नाम से प्रसिद्ध हुआ। श्रमण संस्कृति अथवा जैन धर्म की प्राचीनता सिन्धु घाटी में उत्खनन में प्राप्त ऋषभदेव की मूर्ति से स्पष्ट हो जाती है। सिन्धु सभ्यता के लोग ऋषभदेव की भी पूजा करते थे तभी तो वहां से उनकी मूर्ति प्राप्त हुई है।

डा0 विशुद्धानन्द पाठक तथा डा0 जयशंकर मिश्र का विचार है कि ''विद्वानों का अभिमत है कि जैन धर्म प्रागैतिहासिक और प्राग्वैदिक है। सिन्धु घाटी की सभ्यता से मिली योगमूर्ति तथा ऋषभदेव के कतिपय मंत्रों में ऋषभ तथा अरिष्टनेमी जैसे तीर्थकारों के नाम इस विचार के मुख्य आधार है। भागवत और विष्णु पुराण में मिलने वाली जैन तीर्थकर ऋषभदेव की कथा जैन धर्म की प्राचीनता को व्यक्त करती है।[16] पद्मभूषण स्वर्गीय रामधारी सिंह दिनकर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'संस्कृति के चार अध्याय' में इस प्रकार लिखा है ''बौद्ध धर्म की अपेक्षा जैन धर्म अधिक बहुत प्राचीन है, बल्कि अनुश्रुति के अनुसार मनु चौदह हुए है। अन्तिम मनु नाभिराय थे। उन्ही के पुत्र ऋषभदेव हुए जिन्होने अहिंसा और अनेकान्तवाद आदि का प्रवर्तन किया। जैन पंडितों का विश्वास है कि ऋषभदेव ने ही लिपि का आविष्कार किया तथा क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन जातियों की रचना की भरत ऋषभदेव के पुत्र थे, जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा।[17]

विश्वविख्यात दार्शनिक एवं महानतम् विद्वान डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन् भी जैन धर्म की प्राचीनता को स्वीकार करते हैं। वे लिखते है कि ''जैन परम्परा ऋषभदेव को जैन धर्म का संस्थापक बताती है जो अनेकों सदी पूर्व हो चुके हैं। इस विषय के प्रमाण विद्यमान है कि ईसवीं सन् से एक शताब्दी पूर्व व्यक्ति प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव की पूजा करते थे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वर्द्धमान अथवा पार्श्वनाथ तथा अरिष्टनेमि इन तीन तीर्थकरों का उल्लेख पाया जाता है। भागवत पुराण से ऋषभदेव जैनधर्म के संस्थापक थे, इस विचार का समर्थन होता है।[18]

श्रमण संस्कृति की प्राचीनता इस बात से भी सिद्ध होती है कि यजुर्वेद[19] , अथर्ववेद[20], गोपथ ब्राह्मण[21] तथा भागवत[22] आदि वैदिक साहित्यिक ग्रन्थों में भी श्रमण संस्कृति के आदि प्रवर्तक भगवान ऋषभदेव का उल्लेख मिलता है। इन सब कारणों से यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है कि श्रमण संस्कृति विश्व की समस्त संस्कृतियों से प्राचीन है और प्रागैतिहासिक कही जा सकती है।

**उद्देश्य**

प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से श्रमण संस्कृति की मुख्य विशेषताओं और उसके भारतीय संस्कृति में योगदान का उल्लेख किया गया है।

**निष्कर्ष**

इस प्रकार श्रमण संस्कृति ने भारत की सांस्कृतिक एकता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया और इस देश के निवासियों को उच्च आदर्शों का पाठ पढ़ाया। इस संस्कृति ने विश्व को सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह के महाव्रतों की शिक्षा दी और विश्व शान्ति की स्थापना में अनुपम योग दिया। इसी कारण विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में श्रमण संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

1. श्राम्यन्तीति श्रमणाः तपस्यन्त इत्यर्थः। – हरिभद्र सूरि, दशवैकालिक सूत्र, 173
2. नात्थि य सि कोइ वेसो पिओ व सव्वेसु चेव जीवेसु। एएण होइ समणो ऐसो अन्नो वि पज्जाऔ। –दशवैकालिक निर्युक्ति गा., 155
3. नात्थि य सि कोइ वेसो पिओ व सव्वेसु चेव जीवेसु। एएण होइ समणो ऐसो अन्नो वि पज्जाऔ। –दशवैकालिक निर्युक्ति गा., 156
4. उत्तराध्ययन, 25/29–30
5. नग्नत्व सहजे लोके विकारो वस्त्र वेष्टनम्। –यशस्तिलक चम्पू, पृष्ठ 5
6. एकाकी निस्पृह शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः। कदाशम्भो भविष्याणि कर्म निर्मूलन क्षमः।। – वैराग्य शतक, भर्तृहरि, 89
7. तैत्तिरीय आरण्यक, 2/7/1, पृष्ठ 139
8. भागवत पुराण, 5/3/20
9. तापसा भुंजते चा पि श्रमणाश्चैव भुंजते।–वाल्मीकी रामायण 14, 1–3
10. श्रमणावातरशना आत्म विद्या विशारदाः।– श्रीमद्भागवत, 11–2
11. श्री वाचस्पति गैरोला–भारतीय दर्शन, पृष्ठ 86

12. डा0 वासुदेव शरा अग्रवाल–प्राक्कथन जैन साहित्य का इतिहास पृष्ठ 13
13. डा0 गुलाबराय–'भारतीय संस्कृति', पृष्ठ 75
14. डा0 गुलाबराय–'भारतीय संस्कृति', पृष्ठ 76
15. नवाभवन् महाभागाँ मुनयो हय्थैशंसिना। श्रमणवातरशना आत्मविद्या विशारदाः।। –भागवत 11/2/20
16. डा0 विशद्धानन्द पाठक एवं डा0 जयशंकर मिश्र–पु0 भारतीय इतिहास और संस्कृति, पृष्ठ 199–200
17. पदमभूषण श्री रामधारी सिंह दिनकर – 'संस्कृति के चार अध्याय' पृष्ठ 129
18. डा0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन्–इंडियन फिलोसोफी वोल्यूम।। पृष्ठ 287
19. ऋग्वेद–10/16/1
20. अथर्ववेद–14/5/24.2क
21. गोपथब्राह्मण, पूर्ण–2/8
22. भागवत–5/28